

# क्या पढ़ाएँ ? क्या नहीं ?



**अ**गले साल से लागू होने वाली एन सी ई आर टी की नयी प्रस्तावित किताबें बहस के घेरे में हैं। बहस होनी भी चाहिए। बहस रूपी आग में तपकर ही तो पाठ्यक्रम समाज के सभी पक्षों की उम्मीद पर खरा उतरने लायक बनेगा! लोकतंत्र की यही तो आत्मा है! गौरतलब है कि इतिहास की प्रस्तावित पुस्तकों में पिछले कुछ सालों की कड़वी सामाजिक घटनाओं को शामिल किया गया है। वहीं हिंदी भाषा की पुस्तकों में भी कई नये प्रयोग किये गये हैं, जिससे कुछ लोग नाराज हैं। मसलन धूमिल की कविता 'मोची राम' कुछ लोगों को गलत लग रही है, तो प्रेमचंद की कहानी में जातिसूचक शब्दों पर भी कुछ लोग ऐतराज कर रहे हैं। विभिन्न पक्षों की अपनी अपनी राय है, जिनपर सर्वसम्मत निर्णय लिये जाने की जरूरत है।

किताबों की सामग्री चयन को लेकर पहले भी विवाद हुए हैं। जब केंद्र में भाजपा की सरकार थी, तब भी किताबों में कुछ नये तरीके से तथ्यों को शामिल किया गया था। कांग्रेसियों ने तब भाजपा सरकार पर शिक्षा के भगवाकरण का आरोप लगाया था। ऐसा देखा गया है कि सरकार बदलने पर पाठ्यपुस्तकों में भी कुछ बदलाव किये जाते रहे हैं। आज राजनीतिक पार्टियों ने पाठ्यपुस्तकों को अपना जनाधार बनाने का एक औजार बना लिया है। क्या पढ़ाएँ और क्या नहीं? इस प्रश्न पर निष्पक्ष होकर सोचने की बजाएँ हर पार्टी अपना एजेंडा आगे बढ़ाने में लगी हुई है। यह खतरनाक है। यहाँ मेरा मकसद पाठ्यपुस्तकों में किये गये वर्तमान प्रयोगों के औचित्य पर प्रश्न उठाना नहीं है। लेकिन यह कैसे सुनिश्चित होगा कि आगे भी जो छेड़-छाड़ किये जाएंगे वे बिल्कुल सही और गैर राजनीतिक होंगे? असली प्रश्न यही है कि पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक संबंधी निर्णयों को राजनीति से दूर कैसे रखा जाए? और कैसे एक ऐसा माहौल बनाया जाए, जिसमें

शिक्षाशास्त्रियों और विद्वानों को सामाजिक जरूरतों के हिसाब से बिना किसी राजनीति से प्रभावित हुए पाठ्यपुस्तक, पाठ्यक्रम, आदि बनाने का मौका मिले?

आज राजनीतिक पार्टी, नेता और संस्थान सभी अपनी-अपनी बातें आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं। पर शिक्षा व्यवस्था का जो सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है, यानी, विद्यार्थी और अभिभावक, उसकी कोई सुध नहीं ले रहा है। ताजा हालात में जो दो प्रश्न सर्वाधिक विचारणीय हैं, वह है शिक्षा से राजनीति कैसे समाप्त करें? और शिक्षा को विद्यार्थियों और अभिभावकों की अपेक्षा के अनुकूल कैसे गढ़ें? आज कोई शिक्षा लेने वालों से नहीं पूछ रहा कि आप क्या पढ़ना चाहते हैं? यह सरासर मोनोपॉली है। जिसमें सेवा लेने वालों की कोई पूछ नहीं होती और सेवा देने वाले ही यह निर्णय करते हैं कि वे किन शर्तों पर सेवा देंगे। ऐसी परिस्थिति में ही हर तरह के भ्रष्टाचार तथा राजनीति की गुंजाइश रहती है। इसलिए एक अहम सवाल यह खड़ा होता है कि शिक्षा पर से सरकार की मोनोपॉली कैसे समाप्त की जाए। कुछ वर्षों पहले जब-तक टेलीफोन सेवा पर भी सरकार की मोनोपॉली थी, तब-तक उसमें भी अराजकता छाया थी। लाइनमैन जैसे कर्मचारी भी अपनी शर्तों पर काम करते थे और अपने रेट पर रिश्तत लेते थे। आज जब टेलीफोन सेवा पर से सरकारी मोनोपॉली समाप्त हो चुकी है। आज जब टेलीकॉम क्षेत्र में ढेरों निजी कंपनियाँ काम करने लगी हैं, तो देखिए! परिस्थिति में कितना बदलाव आया है! भ्रष्टाचार कैसे समाप्त हो गया! और गुणवत्ता में कितना सुधार हुआ! आज सेवा देने वाला नहीं, बल्कि सेवा लेने वाला राजा है। हम हमारी शर्तों पर सेवा लेते हैं। कंपनियाँ हमारी पसंद जानने के लिए पैसे खर्च करती हैं और हमारी मनोकुल सेवा पेश करती हैं। सस्ती, फ्री, बेहतर और समस्याओं से मुक्त। क्या ऐसी ही स्थिति शिक्षा क्षेत्र में नहीं आ सकती है? क्या शिक्षा

व्यवस्था अपने ग्राहकों यानी, विद्यार्थियों और अभिभावकों की पसंद के अनुसार कीमत, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, आदि पेश नहीं कर सकती? आज के हालात ये हैं कि स्कूलों ने पढ़ाने का अपना समय तय कर रखा है। अब जो विद्यार्थी उस समय पढ़ सकते हैं, वे पढ़ें। जो उस समय में फिट नहीं आते, जैसे मजदूरी करने वाले बच्चे, वे बेशक न पढ़ें। इससे शिक्षकों और शिक्षा-अधिकारियों के वेतनमान पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

सरकार ने चार-पाँच या दस गाँव पर एक स्कूल बना दिया है। अब जो परिवार अपने लड़कों अथवा लड़कियों को पढ़ने के लिए इतनी दूर भेज सकते हैं, वे भेजें। अन्यथा न भेजें। इससे शिक्षकों और शिक्षा-अधिकारियों के वेतनमान पर कोई फर्क नहीं पड़ता। शिक्षा देने वाले अपने हिसाब से पाठ्यपुस्तक और सामग्री तैयार कर लेते हैं। अब चाहे किसी वर्ग की भावना या प्रतिष्ठा पर ही चोट क्यों न पहुँचे! इससे शिक्षा देने वालों के वेतन पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

हर विद्यार्थी का रुझान एक-सा नहीं होता। और हर विद्यार्थी में एक-दूसरे से अलग क्षेत्रों में बेहतर करने की संभावनाएँ होती हैं। पर शिक्षा देने वाली सरकार ने कुछ गिने-चुने विषय पाठ्यक्रम में शामिल कर लिए हैं। अब वे विषय जिन विद्यार्थियों की प्रवृत्तियों से मेल खाते हैं, वे बेहतर अंक प्राप्त करें और जो विद्यार्थी उपलब्ध विषयों से इतर किसी अन्य विषय-क्षेत्र में बेहतर करने की संभावना रखते हैं, उनका भविष्य भले चौपट हो जाए। इससे शिक्षा देने वालों के वेतन पर कोई फर्क नहीं पड़ता।

टेलीफोन क्षेत्र से सरकारी मोनोपॉली समाप्त हुई, तो विभिन्न निजी कंपनियाँ आयीं। जिन्हें व्यवसाय कर लाभ कमाना था। इसलिए उन्होंने सिर्फ एक स्कीम लॉच नहीं की। बल्कि उपभोक्ता की हर श्रेणी की सुविधा को देखते हुए विभिन्न तरह की स्कीमें लॉच कीं। नतीजा यह हुआ कि ईट ढोने वाले मजदूर और रिक्शा चालकों के हाथ में भी आज चमचमाती मोबाइल सेट नजर आने लगी है। कोई भी ऐसे क्षेत्र को ले लीजिए, जहाँ सरकार की या किसी एक की मोनोपॉली नहीं है, वहाँ हर वर्ग की सुविधा के लिए अलग-अलग तरह के उत्पाद और सेवा मिल जाएंगे। तथा वहाँ कोई राजनीतिक असंतोष या विवाद भी देखने को नहीं मिलेगा।

पर चूँकि शिक्षा, विशेषकर गरीबों की शिक्षा पर सरकार की मोनोपॉली है। इसलिए भारत के अधिकांश गरीब अशिक्षित हैं। वहाँ राजनीति है। और राजनीतिक असंतोष भी है। अतः पाठ्यपुस्तक, पाठ्यक्रम, पाठ्य सामग्री तथा शिक्षा संबंधी अनेक समस्याओं का सरल समाधान यही है कि शिक्षा को सरकारी मोनोपॉली से मुक्त किया जाए। अर्थात् निजी क्षेत्र को शिक्षा में आने का मौका दिया जाए। स्कूलों की स्थापना तथा मान्यता संबंधी फिजूल के कानून और रेगुलेशनों को उठाकर रद्दी की टोकड़ी में फेंक दिया जाए। और संवैधानिक सुधार कर शिक्षा को मुनाफे का व्यवसाय घोषित कर इसे उद्योग का दर्जा दिया जाए। ■

संजय कुमार साह